21

जीव

प्रस्तावना

जिस साधन के द्वारा तत्वों का ज्ञान प्राप्त हो उसे दर्शन कहते हैं। यहाँ तत्व ब्रह्म है। दर्शनशास्त्र में ''ब्रह्मसाक्षात्कार'' ही दर्शन है, ऐसा कहा गया है। जैसे-आत्मा व अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितत्य: ऐसा बृहादारण्यकोपनिषद् में कहा गया है। जिस शास्त्र में ब्रह्म ईश्वर जीव जगत् मोक्ष आदि विषयों का ही आलोचना हो वह दर्शनशास्त्र कहलाता है। इसलिए दर्शन का पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार देखा जाता है- जिससे यथार्थ रूप से अलौकिक अर्थों को जाना जाए वह दर्शन है न कि नेत्रों के द्वारा देखा गया ज्ञान। ब्रह्म ही जीव है दूसरा नहीं। जीव का तत्वनिरूपण के लिए तीन पक्ष बताए हैं। प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद, आभासवाद। प्रतिबिम्बवाद श्रीपद्म-से पादाचार्यनुयायियों का अवच्छेदवाद श्रीवाचस्पतिमिश्रानुयायियों का और आभासवाद सुरेश्वराचार्यानुयायियों का है। उससे अविद्या का कार्य अन्त:करण वहाँ प्रतिबिम्ब जीव का अन्त:करण अवाच्छिन्न और जीव को चैतन्य जीव का आभास कराता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- जीव और ब्रह्म एक कैसे हैं जान पाने में;
- जीव और ईश्वर की पृथक्ता यह जान पाने में;
- जीव के विश्व, तैजस, प्राज्ञ संज्ञा कैसे होती यह जान पाने में;
- जीव विभु और अणु को जान पाने में;

- जीव कर्ता भोक्ता और प्रमाता है यह जान पाने में;
- जीव का कर्तृत्वादि कैसा है यह जान पाने में;
- जीव का जन्म मरण मुख्य विषय है या गौण यह जान पाने में;
- जीव के विषय में प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद और आभासवाद ज्ञात कर पाने में;
- जीव, ईश्वर का क्या संबंध है यह जान पाने में।

21.1 पाठ विस्तार

जीव कौन है ऐसा विचार किया जाता है। यहाँ जीव के स्वरूप विचार में तीन पक्ष होते है, अवच्छेदवाद, आभासवाद और प्रतिबिम्बवाद। सबसे पहले प्रकटार्थकारों के मत में अनादि अनिर्वाच्य भावरूप मूलप्रकृति माया है। उसी ही माया के परिच्छिन्न अनन्त परिच्छेद आवरण विक्षेप शक्तिमान, अविद्या इस पद से बुलाते है, माया की दो शक्तियाँ हैं- विक्षेपशक्ति और आवरणशक्ति, रजस् और तम से अनभिभूत तम आवरण शक्ति है, जैसे अपने अज्ञान से आवृत रस्सी में साँप की सम्भवना, विक्षिप्त विविध सत्स्वरूप विपरीत को प्रपञ्चभाव में आपाद करना यह विपेक्षशक्ति है। जैसे अज्ञान के द्वारा आच्छादित चैतन्य विविध रूप से प्रदर्शन ही विपेक्ष है। माया की जो शक्ति ब्रह्म चैतन्य का आवरण करता है अर्थात् ब्रह्म नहीं है ब्रह्म प्रकाश स्वरूप नहीं है, जहाँ ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है वह आवरण शक्ति है। शुद्धब्रह्म जगत् का कर्ता सृष्टा ऐसी बुद्धि उत्पन्न करने वाली शक्ति विपेक्ष शक्ति है। माया और विद्या में भेद नहीं है। वहाँ माया का शुद्ध चैतन्य सम्बन्धी शुद्धचित्त प्रतिबिम्ब ईश्वर है। माया प्रदेशों में परिछिन्न आविद्यादि पद से प्रतिपादित शुद्ध चित्तप्रतिबिम्ब जीव है। माया आदिरूप से अनित्य है। अत: हम उसके बाह्य नहीं कर सकते हैं। उस माया की तो आवरणविक्षेपरूप से दो शक्तियां हैं, अनन्त है। उसकी शक्ति से समन्वित परिच्छिन्न विभाग प्रदेश है। मायाविद्या के विषय में किन्हीं का मत मायारूप और अविद्यारूपी मूलप्रकृति होती है।

सत्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण है। रजस्तमस् से अनभिभूत शुद्धसाधुत्वसत्व प्रधान माया तद अभिभूतसत्वप्रधान अविद्या है। आवरण शक्ति और विपेक्ष शक्ति तो दोनों तरफ समान हैं। वहाँ माया का चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर है, और अविद्या का चित्प्रतिबिम्ब जीव है, माया कहने पर कामधेनु-वत्स जीवेश्वर दोनों है। समष्टिविषयभेद से अज्ञान दो प्रकार का है। व्यष्टि रूप अज्ञान निकृष्टोपाधि से मलिन सत्व प्रधान होती है, ऐसा व्यष्टि रूप ज्ञान से उपहित चैतन्य जीव है। मलिनसत्व प्रधान से जीव को अल्पज्ञ, अनीश्वर प्राज्ञ कहा जाता है। व्यष्टि रूपी उपाधि मलिनसत्व प्रधान तथा एक अज्ञान के अवभासक जीव है अत: वह प्राज्ञपदवाच्य है। प्राय: वह अज्ञ प्राज्ञ और अल्पज्ञ है। प्रकर्ष रूप से अज्ञ नितान्त अज्ञ ईश्वर की उपेक्षा से ही यही प्राज्ञ है। विश्व तेज अपेक्षा से जो प्रकृष्ट जानता है वही प्राज्ञ प्रकृष्ट ज्ञाता है। अथवा आत्मस्वरूप प्राप्ति

प्रज्ञा है वह प्रज्ञा जिसकी है वह प्राज्ञ है। जीव प्राज्ञ आदि के भेद से तीन प्रकार का है, जाग्रतअवस्थाभिमानी जीव विश्व स्वप्नावस्थाभिमानी जीव तेजस और युषुच्यवस्थाभिमानी जीव प्राज्ञ है। जागृत अवस्था में स्थूल सूक्ष्म कारण तीन प्रकार के शरीर को जीव की उपाधि होती है। उप समीपवर्ती पदार्थ में अपना धर्म स्वीकार करता है यह उपाधि है। स्वप्नावस्था में स्थूल शरीर नहीं रहता, सूक्ष्म अपञ्चीकृत कारण शरीर उस दशा में रहता है। सोते हुए अविद्यारूप कारण शरीर विद्यमान रहता है। सुषुप्ति दशा ही जीव के परम विश्राम का स्थान है। सभी देहादि व्यापार से निवृत्त हुआ जीव स्वात्मप्राप्ति होता है। सुषुप्ति को छोड़कर अन्य जगत जागृतस्वपनावस्था में जीव की स्वात्मप्राप्ति होती है। आत्मा में विश्राम ब्रह्मविद्वानों के द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। साधारणतया पाँच भूतों से निर्मित और मनोबुद्धि से समन्वित स्थूलसूक्ष्म शरीर में आत्मबुद्धि ही जीवभाव है। आत्मा और जीव मान से शरीर में होता है। जैसे पशु रस्सी से बंधा हुआ होने पर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाये जाते हैं, वैसे ही जीव भी वासना से बंधा होने पर शरीर से शरीर को पाते हैं, पक्षी के समान देहरूपी पिञ्जरे में रहते हैं।

21.2 प्रतिबिम्बवाद

विवरणकारमतानुयायी तो जीव के विचार में प्रतिबिम्बवाद को स्वीकार करते हैं, यहाँ विवरणकार कहते हैं- स्वतन्त्रादि गुणस्वरूप ईश्वर चैतन्य को बिम्ब स्थानीय परतन्त्रादि गुणों से विशिष्ट अविद्या में चिदाभास जीव है। अर्थात् ईश्वर बिम्बरूप है और जीव प्रतिबिम्बरूप है, यही प्रतिबिम्बवाद है।

संक्षेप शरीर में तो कार्योपाधि जीव है और कारणोपाधि ईश्वर है ऐसा श्रुति में है, अविद्या में चित्तप्रतिबिम्ब ईश्वर है, अविद्या के कार्य अन्त:करण में चित्प्रतिबिम्ब जीव है। एक उपाधि में कार्यकारण को अपन्न में कारण में प्रतिबिम्ब ईश्वर कार्य में प्रतिबिम्ब जीव है, और इन्हीं पक्षों में बिम्ब स्थानीय शुद्धचैतन्य में त्रिविध चैतन्य को बोलते हैं शुद्ध ईश्वर और जीव।

पञ्चदशी चित्रदीप में श्रीविद्यारण्य स्वामी द्वारा विशेष कहा गया है, शुद्ध ईश्वर और जीव इन तीन को छोड़कर चार प्रकार के बताये हैं। चैतन्य का जैसे एक ही आकाश के घटाकाश जलाकाश मेघाकाश और महाकाश ये चार भेद हैं, उसी प्रकार एक ही शुद्धचैतन्य का कूटस्थ के जीव चैतन्य ईश्वर चैतन्य शुद्ध चैतन्य ये चार भेद हैं।

घट से अवच्छिन्न आकाश घटाकाश है, घटाश्रित जल में प्रतिबिम्बत साभ्र नक्षत्र जलाकाश है। अनवछिन्न आकाश जलाकाश है। महाकारावर्तित मेघमण्डल में स्थित जल में तुषार आकार में वृष्टि के कार्यानुमय जल में प्रतिबिम्बित आकाश मेघाकाश है। उसी प्रकार स्थूलसूक्ष्म देह से अवच्छिन्न चैतन्य घटाकाश स्थानीय कूटस्थ निर्विकार है। वहाँ स्थूलदेह के अधिष्ठान भूत देहद्वय अवच्छिन्न कूटस्थ कल्पित अन्त:करण में प्रतिबिम्बित चैतन्य जलाकाश स्थानीय संसारी जीव है। अनच्छिन्न चैतन्य शुद्ध महाकाश स्थानीय है। अवच्छिन्न

शुद्ध चैतन्य में स्थित माया है। वहाँ माया में स्थित जो सभी प्राणियों को धी वासना है, उनमें प्रतिबिम्बत चैतन्य मेघाकाशस्थनीय ईश्वर चैतन्य के चार प्रकार हैं। और जीव का प्रतिबिम्बित पक्ष दर्शित है।

21.3 अवच्छेदवाद

श्रीवाचस्पति मिश्र के अनुयायी प्रतिबिम्बवाद अपना अवच्छेदवाद को प्रतिपादित करते हैं, तथा अन्त:करण अवच्छिन्न जीव है। यह कार्योपाधि जीव कारणोपाधिईश्वर है। जिस पदार्थ का रूप नहीं होता उसका प्रतिबिम्ब कैसे सम्भव होगा। चैतन्य रूपरहित का प्रतिबिम्ब नहीं होता। रूपवत् रूपवती ही प्रतिबिम्ब दिखती है। लोक में रूपवत ही चंद्रादी के रूपवती जलादि में प्रतिबिम्ब दिखता है। रूप रहित वायु थोड़ी भी नहीं दिखती, जल अवयव का आकाश के जलादि में प्रतिबिम्बदर्शन भ्रम से ही होता है। वहाँ सूर्यादि प्रकाश का ही प्रतिबिम्ब से आकाश प्रतिबिम्ब तन्निमित्त भ्रम ही है।

जैसे बाहर नीला आकाश ग्रह नक्षत्र मुक्त विशाल नभ को आकाश कहते हैं, ऐसा ही सरोवरादिजल में समान अनुभव लोक में सम्प्रति दिखता है। अतएव जल में अगाधत्वप्रीति रूपवत् में नहीं होती ऐसा प्रतिबिम्ब का नियम देख जाता है। रूपरहित का भी प्रतिबिम्ब दर्शन से ही अनुभव हो सकता है।

द्रव्य रूपवत् नहीं होता ऐसा नियम है, अद्वैत सिद्धान्त में न्याय सम्मत गुणद्रव्यत्व परिभाषा का निष्प्रमाणत्व अङ्गीकार से सिद्ध नहीं है। शुद्धचैतन्य निर्गुण निष्क्रिय कदाचिदापि द्रव्य नहीं होता। अत: आकाश प्रतिबिम्ब में बाधकाभावात् तद्वद्चैतन्य का भी अन्त: करणादि प्रतिबिम्ब सम्भव मे बाधक नहीं है। रूपवती भी प्रतिबिम्ब ही नहीं है। जल रूप में घी में जलरूप के वर्ण का प्रतिबिम्ब दर्शन से चैतन्य का नोरूप के अन्त: करणादि में प्रतिबिम्ब पक्ष में थोड़ा भी बाधक नहीं होता। यहाँ कहा जाता है-कि अन्धकार में जलादि में साभ्र नक्षत्र आदि में आकाश के प्रकाश के बिना प्रतिबिम्ब नहीं मिलते वहाँ प्रकाशप्रतिबिम्ब से ही अभ्र नक्षत्रादि प्रतिबिम्ब की उपलब्धि के आकाश प्रतिबिम्ब की कल्पानुपत्ति से है। अत: जल में आकाश की अवच्छेदकता ही है नहीं तो और प्रतिबिम्ब प्रकाश का प्रतिबिम्ब अवच्छेदक ही मानना चाहिए। किञ्च आलोक प्रतिबिम्ब गमन में प्रतिबिम्ब है और जलादि में दो प्रतिबिम्ब की कल्पना गौरव ग्रस्त है।

जल में अगाधत्व की प्रतीति है यह गगनगत प्रतीयमान प्रतिबिम्ब से ही उत्पन्न होती है। न धर्मिप्रतिबिम्ब के बिना धर्मप्रतिबिम्ब नहीं होता है। ऐसा वक्तव्य स्फटिक में जपाकुसुमधर्मियों आरूण्य के प्रतिबिम्ब दर्शन से है। सूर्यमण्डलादि के प्रतिबिम्बाभाव में भी तद्गत प्रकाशादि धर्म का प्रतिबिम्ब दर्शन से होता है।

न ही ध्वनि में नोरूप में नौ रूप के वर्ण का प्रतिबिम्ब निदर्शन भी युक्त है। वर्ण व्यञ्जक ध्वनि के सन्निहित होने से तद्गत उदात्तदिधर्मो के आरोप से एक ही उपपत्ति

होती है। न ही ध्वनि में वर्णप्रतिबिम्ब भी तो व्यञ्जकता से सन्निहित का धर्मध्वनियों का वर्णों में समान आरोप सम्मत है।

न ही प्रतिध्वनि पूर्वशब्द प्रतिबिम्ब जैसे वर्णात्मक शब्द व्यक्त का भेरामृढङ्गादि शब्द अव्यक्त के यह आकाश भावनादि में कुएँ आदि की प्रतिध्वनि सुनी जाती है वह पूर्व की सञ्जात शब्द का प्रतिबिम्ब है। प्रतिध्वनि का प्रतिबिम्ब होता है यहाँ प्रमाण नहीं है तो यह प्रतिध्वनि कौन है? कहा जाता है–

पञ्चीकरण प्रक्रिया द्वारा वायुप्रभृतियों को भी शब्द प्रसिद्ध है। पटद्रपयोनिधि जलादिशब्द से पृथिवी जलादि के स्व शब्द है। तो कौन आकाश का शब्द है? प्रतिध्वनि ऐसा ही यहाँ उत्तर है। पृथिव्यादि जन्य शब्दों की यह प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द से प्रसिद्ध है। उसका प्रतिध्वनिरूप आकाश शब्द का अन्य शब्द प्रतिबिम्बत्व अप्रमाणिक है। यदि कोई अन्य शब्द आकाश का हो तब वह प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि होती है। अन्यगत शब्द की ही यह प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द है।

उस आकाश शब्द के प्रतिध्वनिरूप का और आकाश का उपादानत्व परद्रपयोनिधि शब्द का निमित्तत्व है। आकाश में प्रतिध्वनि के उत्पत्ति में थोड़ा भी बाधक नहीं है।

यदि आकाश शब्द की प्रतिध्वनि हो किन्तु उसके बिम्ब रूप में होने पर क्या क्षति? ध्वनि को प्रतिगत प्रतिध्वनि कहा जाता है। पहले ध्वनि को जानकर ही उसके प्रतिबिम्बरूप प्रतिबिम्ब आकाश में हो तो क्या क्षति? बिम्बप्रतिबिम्ब के भेद पक्ष में आकाश में प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न चन्द्रादि प्रतिबिम्बवत् प्रातिभासिक बोला जाता है। और आकाश के शब्द गुणत्व को न हो ना ही जल के चन्द्रादि प्रतिबिम्ब गुणों को कुछ ही मानते हैं। यदि बिम्बप्रतिबिम्ब के अभेदपक्ष को भी आकाश के शब्दगुणत्व की अनापत्ति है। प्रतिबिम्ब की प्रतिध्वनि से बिम्बाभिन्नतया और बिम्ब के पटदपयोनिधि गुण से है, न ही पटदादिगत शब्द आकाश के गुण होना चाहते है।

प्रतिध्वनि भिन्न कोई आकाश उपादानक शब्द है या नहीं ऐसा यहाँ उत्तर है। आकाश का यदि उपादान स्वीकार किया जाता है तो सहकारिकारण का अभाव होता है। यदि भेर्यादि हि सहकारिसाधन के द्वारा आकाश उपादानक कोई प्रतिध्वनि भिन्न शब्द होता है ऐसा माना जाता है। तब प्रतिध्वनि की विलापोत्पत्ति होती है। अतः यह पक्ष युक्त नहीं होता है।

प्रतिध्वनि से अतिरिक्त आकाश देशस्थ शब्द का अनुभव नहीं होता है। वह अनुसूयमान शब्द आकाश से ही र्निमित्तक नित्य होता है। उससे प्रतिध्वनि ही आकाश शब्द युक्त है, वह प्रतिबिम्ब रूप नहीं है। वर्णात्मक प्रतिध्वनि के अवश्य ही प्रतिबिम्ब है ऐसा कहा जाता है। उस प्रतिध्वनि के आकाशादि में उत्पादक के अभाव से, तथा आकाशादियों के वर्णों के अभिव्यञ्जक कण्ठतालु आदि घात जन्य मूल ध्वनि ही है, न ही कण्ठतालादि। और मूलध्वनि का जैसे वर्णाभिव्यञजक उसी प्रकार से जययान प्रतिध्वनि ही वर्णप्रतिध्वनि अभिव्यञ्जक अभिमत है। आकाशादि में जो वर्ण प्रतिध्वनि उसके मूलध्वनि जन्यप्रतिध्वनि

टिप्पणी

ही अभिव्यञजक है, न ही पुन: उसके कण्ठताल्वादि अभिघात आवश्यकता है। न कभी भी अरूपवत अरूपवती प्रतिबिम्बसम्भव देखते हैं, अरूपवत् अरूपवती इनका अचाक्षुष का अचाक्षुष में है। अत: अन्त:करण से अविच्छन्न का चैतन्य का जीवत्व है।

जैसे जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब वैसे है कृत्सन के चैतन्य अन्त:करण में प्रतिबिम्ब सम्भव है, जैसे जल से बाहर स्थिति आकाश के जल में प्रतिबिम्ब उसी प्रकार जल में स्थित का भी इसी प्रकार अन्त:करण में प्रतिबिम्ब बिम्बभूत चैतन्य का अन्त:करण ही और बिम्बभूत का चैतन्य ईश्वर का अन्त:करण में प्रवेश के अभाव से होता है। ना ही अन्त:करण अवच्छेद के पक्ष में अन्त:करण का विभिन्न प्रदेश में शरीर के साथ जाते हुए उस अवच्छिन चैतन्य का भी भेद कहा है। जैसे घट का नथनों से तत् प्रदेश आकाश ही अवच्छेद् है। इसी प्रकार से कही अन्त:करणावच्छिन्न का कर्तृत्व और जगह थी उसके भोक्तृत्व आदि हानि का न किया गया अभ्यागम प्रसंग है। प्रतिबिम्ब पक्ष में यह दोष नहीं है, अन्त:करण के साथ उस प्रतिबिम्ब का भी गमनादि युक्त से घटगत जलगत प्रतिबिम्बिवत् है। प्रतिबिम्बपक्ष में भी कहे गये दोष का प्रसंग है। जल घट में नीयमान पूर्वप्रदेश का ही आकाश के प्रतिबिम्ब वहाँ भी यहाँ स्थित जल घट व उस प्रदेश का ही प्रतिबिम्ब है, और बिम्ब भेद से प्रतिबिम्ब का भी भेद उक्त है। उसी प्रकार से अन्त:करण प्रतिबिम्ब का नाना निम्न भेद से भेद जल में दिखता है। अन्त:करण प्रतिबिम्ब जीव इस पक्ष में नाम होना चाहिए, उक्त दोष की तुलना अविद्याप्रतिबिम्ब जीव इस जीव पक्ष में यह दोष नहीं है। अविद्या में चित्प्रतिबिम्ब जीव है, अन्त:करण तो उसके व्यापक जीव की विशेषाभिव्याप्ति हेतु है, जैसे जलाशय के ऊपर गमनशील लोक विशेष से अभिव्यक्ति के लिये उस प्रकार अविद्याप्रतिबिम्ब की विशेष अभिव्यक्ति हेतु अन्त:करण है। तथा एक का ही अविद्या प्रतिबिम्ब का जीव के वहाँ या अन्यत्र कर्तृत्वमोकृत्व आदि विशेष अभिव्यक्ति के लिए अन्त:करण है न ही कृतहानिकृत का अभ्यगमदोष, अवच्छेदवाद में भी हो सकता है।

21.4 आभासवाद

कुछ वेदान्तिक आभासवाद को स्वीकार करते है, इस मत में आत्मा सत्य है, आत्मा भिन्न नहीं होती है, बस थोड़ा अन्तर है। अत: आत्मा न अन्तर्यामी है न साक्षी और न जगत्कारण है। तथापि अज्ञान रूप के द्वारा उपाधि से युक्त है, युक्त होने पर आत्मा अज्ञान के साथ वादात्म्यापन्न होती है। और अज्ञान में सम्पृक्त चित् के आभासकारण से इसे अन्तर्यामी, साक्षी या ईश्वर कहा जाता है। बुद्धि उपहित होने पर बुद्धिगत अपना चित्त आभास को न जानकर जीव कर्ता भोक्ता और प्रगाता होता है।

21.5 जीव का कर्तृत्वादि जन्ममरण विचार

इस जीव में कर्म द्वारा कर्तृत्व दु:खसुख का भोगना सम्भव होता है। जागृत, स्वप्न और

सुषुप्ति इन तीनों अवस्था में जीव रहता है, स्थूल सूक्ष्मकारण शरीर में अभिमानी जीव क्रमशः विश्व, तैजस और प्रज्ञ संज्ञा प्राप्त करता है। अविद्या द्वारा वशीभूत जीव देहेन्द्रियों के साथ उनके अधिगम्य के साथ शारीरिक ऐन्द्रिय और मानसिक दुःखों का भोक्ता होता है। अविद्या के अपगम से ब्रह्मसाक्षात्कार होने से स्वस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। आनन्दात्मक ब्रह्मस्वरूप का अनुभव ही जीव का मोक्ष है। जीव के जन्ममरण में मृत्यु है इस सन्देह में जन्म एवं मरण यह अद्वैतवेदान्त का सिद्धान्त है, मेरा पुत्र हो तथा जातकर्मादि से ही जन्ममरण में आत्मा जीती है यह संशय होता है। सुषुप्ति मूर्च्छा समाधि में चैतन्य के अभाव से जीव चिद्रूप है। जागरण में आत्मा के संयोग से चैतन्यमुख्यगुण आत्मा में होता है, तो कैसे चैतन्य का सुषुप्ति आदि में लुप्त होता है, तब कहते हैं कि सुषुप्ति में शरीर नहीं लुप्त होता है। उस साक्षिरूप से होता है, अन्यथा 'मै सोता हूँ' ऐसा सुषुप्ति आदि परामर्श न हो, तो कैसे सुषुप्तादि में द्वैताप्रतीति होती है? वहाँ कहते हैं, द्वैत के लोप से द्वैतादृष्टि होती है, ना कि दृष्टि लोप, कैसे हम यह जानें? तब कहा जाता है कि अन्यथा लोपवादी भी निःसाक्षि के लोप में बोलने की शंका से। तो क्या प्रमाण है, कि द्रष्टु दृष्टिलोप अर्थात् ज्ञान लोप नहीं होता है, ''नाहि द्रष्टु'' ऐसा श्रुति में कहा गया है।

21.6 जीव का परिमाण विचार

''यह जीव न अणु है, न मध्यम परिमाण है किन्तु विभु है'' जीव अणु उपाधि के द्वारा होता है। इस समय जीव की क्या परिभाषा है ऐसा विचार होने पर अणु परिमाण से ऊपर मध्यम परिमाण और महा परिणाम, आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती है यह नित्य चैतन्य है। अतः आत्मा ही जीव पर आती या गिरती है। आगे कहाँ से जीव का परिमाण है यह चिन्ता अवतार, कहा जाता है जीव परिच्छेद को प्राप्त करता है। स्वशब्द से कही अणु परिमाण ग्रहण किया जाता है। ऊपर कहे बुद्धरूप जीव उपाधि संयोग का होना सम्भव है। जब तक यह संसारी होता है इसके सम्यक् अदर्शन से सांसारित नहीं होता है तब तक इसका बुद्धि से संयोग नहीं होता, जब तक यह बुद्धिरूप उपाधि सम्बन्ध है तब तक जीव संसारी जीव का जीवत्व होता है। बुद्धि कर्ता या जीव कर्ता इसे एक ही जानना चाहिये। उस गुणसार वचन से ब्रह्मसूत्र में तद्गुणसारत्वाधिकरण ही अपर भी जीवधर्म प्रपञ्चित होता है। कर्ता भी यह जीव होता है। यह सब शास्त्रार्थ वचन के संगत में होता है। और यही यज्ञ करें, खाए तथा दान करें इस प्रकार से विधि शास्त्र अर्थवत् होता है। अन्यथा यह अनर्थक होता है, इसलिये कर्ता सत्कार्य का उपदेश करता है, कर्ता के अभाव में यह उत्पन्न नहीं होता है। और जीव का यह कर्तभाव उपाधिनिमित्त होता है। कर्तृरूपी जीव धर्म जीव में आरोपित होता है, यह यथार्थ नहीं बल्कि असंग आत्मा है।

जैसे वृक्ष से वाष्पादि हाथ में स्वीकार कर कर्ता दु:खी होता है, और अपने गृह को प्राप्त वियुक्त वाष्पादि कारक स्वस्थ निवृत्त निर्धापार सुखी होता है, अत: जीव का कर्तृत्व अविद्या रूपी उपाधि से निवृत्त नहीं है। यह जीव का कर्तृत्व ईश्वर के अधीन है, जीव ईश्वर द्वारा चलाने पर शुभाशुभ कर्मों का पालन करता है, और जीव का अणुत्वविभुत्व कर्तृत्वादि संक्षेप से प्रतिपादित है।

21.7 जीव का एकत्व नानात्व विचार

21.7.1 एकजीववाद

जीव का नानात्व और एकत्व के दो पक्ष है। इसी का एकजीववाद ओर अनेक जीववाद कहा जाता है। आशय यह है कि जीव परमेश्वर का साधारण चैतन्यमात्र बिम्ब है। उसके ही बिम्ब का अविद्यात्मिका में माया का प्रतिबिम्ब है। अन्त:करणों में प्रतिबिम्ब जीव चैतन्य है, यह जीव कार्योपाधि है और ईश्वर कारणोपाधि है। कोई कहते हैं कुछ ही अवच्छेदपक्ष है और न प्रतिबिम्बपक्ष, अखण्ड के एक का नित्य जीव के अवच्छेद के असम्भवात् से यह अरूप का प्रतिबिम्ब है। ब्रह्म ही अपनी अविद्या से विद्या को संसारित्व मोचित करता है। ब्रह्म एक ही अद्वितीय है। अन्य तो इस पक्ष में बद्धयुक्त अवस्था जीवेसर को विभागादि व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं, वे स्वप्न दृष्टान्त को भी संगत नहीं मानते है। उनके मत में तो जगत् की तुल्यता कल्प से अकस्मात् ही जगत् स्वप्नवत् लुप्त होता है। विद्या का उपदेश भी अनर्थक माना जाता है।

जीव हिरण्यगर्भ ब्रह्म का मुख्य प्रतिबिम्ब है, अन्य जीव तो उस मुख्य जीव के कारण उपाधि के प्रतिबिम्बभूत हैं। इस मत में तो बिम्बभूत चैतन्य ईश्वर उसका हिरण्यगर्भ प्रतिबिम्बभूत एक जीव है, पूर्व मतानुसार तो एक जीव किस शरीर में है यह विनिगमन एकतरपक्षपातिनी युक्ति उसका अभाव है।

अन्य मतों में हिरण्यगर्भ के प्रतिकल्प भेद से किसका हिरण्यगर्भ मुख्य जीव है ऐसी विनिगमना है, सूत्रादि के द्वारा विरोध अन्यथा भी परिहार कर सकते हैं। अत: एक ही जीव अविशेष रूप से सभी शरीर में उपस्थित है, अज्ञान एक है अत: उसमें ब्रह्मपतिबिम्ब रूप एक जीव है। उन जीवों का मुख्य तथा अमुख्य ऐसा विभाग नहीं है, वहाँ परस्पर दु:खादि स्मरण तो नहीं होता है। जन्मान्तर में अनुभूत सुखादि का स्मरण वैसा नहीं होता है, जैसा यहां भी शरीर भेद से स्मृति नहीं होती है, शरीर भेद ही यहाँ प्रतिबन्धक है, यहाँ योगियों का काय व्यूहादि द्वारा सुखादि अनुभव कैसे हो ऐसा नहीं कहा है। यह अनुसन्धान योगप्रभाव से सम्भव होता है इस मत में भिन्न भिन्न शरीर है पर जीव एक ही है।

इस प्रकार एकजीव विवाद में तीन मत प्रदर्शित है।

टिप्पणी

21.7.2 अनेकजीववाद

जीव बहुत हैं। एकजीववादपक्ष में स्वीकृत दोष श्रुतिस्मृतिसूत्रों के विरोध से होता है, कारण है कि इससे बंधमुक्त अवस्था में अव्यवस्था होती है। श्रुतिसूत्र में या अन्यत्र बद्धमुक्त व्यवस्था स्वीकार की जाती है। अधिकरण में बंधमुक्त व्यवस्था भाष्कार शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित की गयी है। अत: अन्त: करण आदि का जीव की उपाधि रूप से ग्रहण करके अनेकजीववाद को आश्रय मानकर बद्धमुक्त व्यवस्था प्रतिपादित की जाती है।

सूत्र भाष्य में जीव ही चेतन का शरीराध्यक्ष प्राणों का धर्ता ऐसा प्रसिद्ध वचन शंकरभगवत्पाद के मत में हैं। जीव की न तो उत्पत्ति और न ही विलय है। जैसे मंत्रक कारिका में लिखा है–

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बंधों न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

जीव परमात्मा का अंश नहीं होता है। संसार के सभी भूत इसके पाद है, ऐसा छंदोग्योपनिषद् में बोला है। अंशत्व भी जीव की अभेदवादी ऐसा अन्य श्रुतियाँ प्रतिपादित करती हैं जैसे इस देह में यह जीवात्मा मेरा अंश है ऐसा भगवद्गीता में है। यहाँ थोड़ा संशय है जैसे जीव का ईश्वर का अंश होने से जीव द्वारा संसार में भोगा गया सुख दु:ख ईश्वर को भी होता है। यह एक समाधान है– सूर्य के प्रतिबिम्ब में कांपने से भी सूर्य नहीं काँपता है। उसी प्रकार से जीव के दु:ख से ईश्वर का कोई प्रसंग नहीं है। उसी प्रकार आत्मा के एकरूपता पक्ष में सर्व दोषभाव सिद्ध है। जीव का न ही अणु परिमाण है न ही मध्यम् परिणाम, जीव तो महापरिमाण विभु है। जैसे जीव का क्या परिमाण है ऐसा चिंतन किया जाता है कि अनुपरिमाण से ऊपर मध्यम परिमाण और क्या है महापरिमाण ऐसा प्रश्न होने पर परम् ही ब्रह्म जीव है उस तक परम ब्रह्म उन जैसे ही जीव होना चाहते हैं। परम ब्रह्म का विभुत्व सर्वत्र है वही विभु जीव है और जीव का प्रज्ञत्व, तैजसत्व, हिरण्यगर्भत्व–जैसे

प्राज्ञस्तत्राभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते।
हिरण्यगर्भतामीश स्तयोर्व्यष्टि समष्टिता॥

जीव स्वयं प्रकाश है। स्वप्नवस्था को अधिकृत्य यहाँ तक पुरूष स्वयं ज्योति है ऐसा बृहदारण्यक उपनिषद में कहा है। मैं भी बनूँगा ऐसा व्यवहार वृत्ती से प्रतिबिम्बत चैतन्य को लेकर उत्पन्न होता है। एकजीववाद में अविद्या प्रतिबिम्ब जीव अनेक जीववाद में अन्त:करण प्रतिबिम्ब जीव होता है। भामती का अनुसरण करते हुए अद्वैत अविद्या का आश्रय जीव और अविद्या का विषय ब्रह्म को ही मानते हैं।

जीवेश्वर का संबंध ऐसा विचार वेदान्त में देखा जाता है। जीवेश्वर न तो स्वामी–दास की तरह न ही आग–पानी की तरह संबंध स्थापित करते हैं। ईश्वर तो निरवयव है

इन दोनों मैं वस्तुतः अभेद संबंध है। दोनों का भेद उपादि के द्वारा ही परिलक्षित होता है। जीव और ब्रह्म का ऐक्य पारमार्थिक तत्व है। ईश्वर का अंश जीव है ऐसा संशय उत्पन्न होता है। यद्यपि स्वामी दास ही शीतऋषितव्यभाव काल में प्रसिद्ध है तथापि शास्त्र तो अंशत्व निश्चित है। निरतिशयोपाधि सम्पन्न ईश्वर निहिनोपाधि सम्पन्न से जीवों का प्रशस्ति है। थोड़ा प्रतिषेधित है, यहाँ निरवयव ब्रह्म का अंश जीव नहीं लगता ऐसा बहुत बार भाष्य में कहा है।

जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। ईश्वर तो जीव के किए प्रयत्न धर्माधर्मलक्षण आदि के लिए प्रेरित करता है। जिसे वैशमीनैरघन्यदि दोष ईश्वर में प्रसारित नहीं होते हैं। जैसे अविद्या अवस्था में उपाधि निमित्त कार्य यह जीव का अभिमत है।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. जीव कौन है?
2. प्रज्ञा कौन है?
3. तैजस कौन है?
4. जीव विभु है या अणु?
5. जीव नित्य है या अनित्य?
6. जीव ब्रह्म ऐक्य हैं या अनैक्य?
7. जीव की क्या उपाधि है?
8. किसका आभासवाद है?
9. प्रतिबिम्बवाद किसका है?
10. अवच्छेदवाद किसका है?
11. क्या जीव का कर्तृत्व स्वतंत्र है?
12. विश्व क्या है?
13. अविद्या की कितनी शक्तियां हैं? और वे कौन सी हैं?
14. भामती के मत में अविद्या का आश्रय कौन है?
15. विवरन्त के मत में अविद्या का आश्रय कौन है?
16. जीव और ईश्वर का क्या संबंध है?
17. जीव परमात्मा का कौन सा अंश है?

पाठसार

अविद्या का संसक्त अविद्या रूपी उपाधि के साथ ब्रह्म के विशुद्ध चैतन्य को ही जीव कहा जाता है। प्रत्येक जीव के अन्त:करण में एक उपाधि होती है। अत: जीव को परिच्छिन्न अल्पज्ञ माना जाता है। संस्कार से अवच्छिन्न अज्ञान प्रतिबिम्बत चैतन्य जीव है। अन्त: करण में ब्रह्म प्रतिबिम्ब ही जीव है। जीव के स्वरूप के विषय में अवच्छेदवादी तीन पक्ष हैं-

वाचस्पतरेवच्छिन्न आभासो वार्तिकस्य च।
संक्षेपशारीरककृत: प्रतिबिम्बं तथेष्यते।।

वर्तिककार सुरेश्वरचार्य, संक्षेप शरीरकार सर्वज्ञात्ममुनि। वहाँ अवच्छेद में अन्त: प्रवेश है। उनसे युक्त अवच्छिन्न है। जैसे जल में अन्त: प्रविष्ट आकाश को जलावच्छिन्न कहा जाता है। और आज्ञानाश्रयीभूत शुद्ध चैतन्य को जीव कहते हैं। जिनके मत में अविद्या के द्वारा संयुक्त चैतन्य जीव या अवच्छिन्न या उपहित या प्रतिबिम्बित है उनके मत में जीवस्था में जीव एक ही है। कारण है कि यहाँ अविद्या एक ही है उनके स्वीकार में। यह एक जीववाद भामाती के मत में है। बहुत प्रकार से अविद्या या अविद्यय कार्य बुद्धि द्वारा संयुक्त चैतन्य को जीव और वह जीव अवच्छिन्न या उपहित या प्रतिबिम्बित होता है ऐसा जाना जाता है उनके मत में जीव अनेक प्रकार के हैं। वर्तिककार सुरेश्वर पञ्चपदीविवरणका प्रकाशात्मा संक्षेपशरीरिककारसर्वज्ञात्मा प्रकटार्थ एवं विवरणकार भी जीव के अनेक प्रकार मानते हैं।

अद्वैतवेदान्त के मत में हमेशा नित्यचैतन्य स्वरूप है। स्वरूपत: जीव के ब्रह्मत्व में भी बद्धदशा में अविद्या द्वारा उठे हुए अन्त: करण के परिमाण गुण से अणुत्वादी परिमाण होता है। कर्ता भोक्ता इसी के द्वारा होता है। परमेश्वर के कल्पित अंश रूप के द्वारा जैसे कि अंगीकृत जीव अत: जीव का कर्तृत्व भोग सभी ईश्वर के अधीन है। जिसमें प्रतिबिम्ब के द्वारा ब्रह्म चैतन्य के जीवत्व को भांति है वह अविद्या जीव का करण शरीर है। पंचप्राणक, बुद्धि, मन और पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर सूक्ष्मशरीर सत्रह अवयव लिंग से जीव स्वरूपित है। जैसे पंचदशी में कहा है-

बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपंचकैर्मानसाधिया।
शरीरं सत्पदशभि: सुक्षं तल्लिङ्गमुच्यते।।

लिंग शरीर अंतर्गत अन्त:करण में प्रतिबिम्बित जीव चैतन्य को प्रमाता कहा जाता है। प्रमाण सहयोग से ज्ञानहारणकारी व्यवहार संपादक यह जीव होता है।

योग्यतावर्धन

ज्ञान के द्वारा जीव मुक्त होता है यह भारतीय दर्शन का परमतत्व है। वह ज्ञान जीव

और ब्राह्मण का ऐक्य अनुभव है। मैं ही परम् ब्रह्म स्वरूप हूँ ऐसी जीव का यह अनुभव उपलब्धि वही ज्ञान अद्वैतवेदान्त का चरम सिद्धान्त है। अतएव गीता में भी भगवान वासुदेव ने कहा है ''न हि ज्ञानेन सदृश्यम् पवित्रमहि विद्यते''। और जीव के स्वरूप ज्ञान के द्वारा हम में आदर भाव बढ़ता है यह कोई भी संश्लेष नहीं है। कौन हूँ मैं? इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त दर्शन में प्रतिपादित है। अत: पूरे विश्व में वेदान्त का महान आदर किया जाता है। ''मैं ब्रह्म हूँ'' यह तत्व सभी प्रकार के वेदान्तों में विशिष्टाद्वैत में प्रतिपादित है। अद्वैत वेदान्त का उन वेदान्तों में मूर्धन्य स्थान है।

अध्येता इस पाठ को पढ़कर अपनी चिंता शक्ति को बढ़ाने में दर्शन विचार को जानने उनका स्वरूप जानने तथा वास्तविक जीवन में उनका उपयोग करने के विषय में इसमें पटुता अर्जित करने के लिए अधोलिखित बिंदुओं को देखें-

- वेदान्त का हमारे जीवन में प्रयोग क्षेत्र है। वेदान्त विमूर्तत्व नहीं है। वेदान्त हमारे दैनिक जीवन में ओतप्रोत भाव से जुड़े हैं। अत: मैं ही जीव ब्रह्म हूँ ऐसा विचार सर्वदा करना चाहिए। जिससे दैनिक विचार में पटुता आती है।
- मैं नित्य शुद्ध चेतन आत्मा ब्रह्म हूँ इस ज्ञान से सर्वविध मानसिक पीड़ा का नाश होता है।
- मेरे दु:ख सुख इत्यादि क्लेशों का निवारण हो। भले ही वैसे सुख दु:ख नहीं है। अत: मैं विशुद्ध आत्मा हूँ ऐसा चिंतन से कायिक दु:खों का मानसिक क्लेशों का निवारण स्वत: ही होता है। जिससे मनुष्य जीवन आनंदपूर्ण होता है। मैं शुद्ध नित्य हूँ ऐसे ज्ञान से आत्म विश्वास बढ़ता है। अत: छात्र को उस प्रकार के शुद्ध विचारों से अपनी विचारधारा का मार्जन कारण चाहिए।
- अद्वैत वेदान्त में जो स्वरूप को जानकर भी अन्यत्र दर्शनों में जीवस्वरूप विचार कैसे स्थापित है यह जानना चाहिए वहा अच्छा क्या है उसका ज्ञान लेना चाहिए।
- प्रारम्भिक स्तर में छात्रों के लिए उपयोगी ग्रंथ वेदान्तसार सदानन्द योगी द्वारा कृत सुस्पष्ट है। एवं शंकरभगवत्पाद कृत विवेकचूड़ामणि बालकों के लिए अत्यन्त रमणीय ग्रन्थ है।
- अपनी मातृभाषा में लिखित ग्रन्थ है उन्हें ग्रहण कर पढ़ना चाहिए। देशी तथा विदेशी भाषाओं में वेदान्त के बहुत ग्रन्थ हैं। वहाँ जो सुलभ तथा जानने में सुकर ग्रन्थों से ज्ञान अर्जित करना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. जीव स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. अवच्छेदवाद का विवरण दीजिए।

टिप्पणी

3. प्रतिबिम्बिवाद का विवरण दीजिए।
4. आभासवाद क्या है?
5. जीव की कर्तृत्वभोक्तित्व की व्याख्या कीजिए?
6. जीव की जन्म मरण की कैसे व्याख्या है?
7. एकजीववाद की व्याख्या कीजिए।
8. अनेकजीववाद की व्याख्या कीजिए।
9. जीव के अणुत्वविभूत्वादी विचार का वर्णन कीजिए।
10. जीवेश्वर का क्या संबंध है? व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. जीव अन्त:करण में प्रतिबिम्बित उपहित अवच्छिन्न या चैतन्य।
2. सुषुप्त अवस्था अभिमानी जीव प्राज्ञ है।
3. स्वप्ना अवस्था अभिमानी जीव तैजस है।
4. जीव विभु है।
5. जीव नित्य है।
6. जीवब्रह्म का ऐक्य ही अद्वैतवेदान्त का सिद्धान्त है।
7. जीव की उपाधि मलीन सत्व प्रधान अज्ञान है।
8. आभासवाद वर्तिकाकर सुरेश्वरचार्य का है।
9. प्रतिबिम्बवाद पञ्चपदी कवि विवरणकार का है।
10. अवच्छेदवाद भामतीकार वाचस्पति मिश्र का है।
11. जीव की कर्तृत्व परतंत्र ईश्वराधीन है।
12. जाग्रत अवस्थाभिमानी जीव विश्व है।
13. अविद्या की दो शक्तियां हैं, विक्षेपशक्ति और आवरणशक्ति।
14. भामती के मत में अविद्या का आश्रय जीव है।
15. विवरण के मत में अविद्या का आश्रय ब्रह्म है।
16. जीवेश्वर का अभेद संबंध अद्वैत वेदान्त में स्वीकार किया जाता है।
17. नहीं, जीव परमात्मा स्वरूप ही है।

।।इक्कीसवाँ पाठ समाप्त।।